बनास जन

नयी सदी में

नामवर : 2

बनास जन

साहित्य-संस्कृति का संचयन

नयी सदी में नामवर : 2

परामर्श : प्रो. काशीनाथ सिंह, वाराणसी
डॉ. ममता कालिया, दिल्ली
डॉ. के. सी. शर्मा, चित्तौड़गढ़
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, जयपुर
प्रो. माधव हाड़ा, उदयपुर

सम्पादक : पल्लव

सहयोग : गणपत तेली, भँवरलाल मीणा

कला पक्ष : निकिता त्रिपाठी

आवरण फोटो : शैलेश कुमार, दिल्ली

सहयोग राशि : 100 रुपये (यह अंक)–डाक द्वारा मँगवाने पर–125 रुपये
200 रुपये (संस्थागत)–डाक द्वारा मँगवाने पर–225 रुपये
6000 रुपये–आजीवन (व्यक्तिगत)
10,000 रुपये–आजीवन (संस्थागत)

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
ह्वाट्सअप : +91–8130072004 (केवल लिखित संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmail.com
वेबसाइट : www.notnul.com

कृपया रचनाएँ भेजने के लिए सिर्फ ई-मेल का उपयोग करें। आग्रह है कि इस संबंध में पूछताछ न करें। 'बनास जन' में सभी रचनाओं का स्वागत है।

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
संपादन एवं सह संपादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित।

BANAAS JAN
Peer Reviewed Journal
(A Collection of Literature)

ISSN 2231–6558

अनुक्रम

अपनी बात		4
अनौपचारिक		
रहिमन यों सुख होत है....	समीक्षा ठाकुर	7
आलोचक नामवर सिंह		
ऐसा कहाँ से लाऊँ कि तुझसा कहूँ जिसे	शिरीष मौर्य	14
नामवर होने के मायने	रेनू त्रिपाठी	28
अभिनव संस्कृत काव्यशास्त्र 'नामवर के नोट्स'	पूरणमल वर्मा	34
समकाल की पहचान : न हुआ, पर न हुआ लोगों को नामवर का अंदाज़ नसीब	रेणु व्यास	39
साहित्य साधना के अलक्षित चिह्न	अनुपम कुमार	48
संवादों में गहन वैचारिकता	श्रेयसी सिंह	52
एकांतिकता में रोशनाई के उजाले : सखुनतकिया	लोकेश कुमार गुप्ता	56
किताबों की चर्चा में नामवर सिंह	प्रज्ञा त्रिवेदी शुक्ला	60
नामवर के संवादी व्यक्तित्व एवं वैचारिक सत्ता का जीवंत दस्तावेज--यथाप्रसंग	विमलेश शर्मा	67
सब कहाँ कुछ : भारतीय संस्कृति और नवजागरण की पुनर्व्याख्या	सोनम कुमारी	76
प्रगतिशील परंपरा की पड़ताल	स्नेह सुधा	79
सघन तम की आँख	मानवेंद्र प्रताप सिंह	84
कवि-गद्यकार नामवर सिंह		
वाचिक परम्परा के नामवर	बिमलेन्दु तीर्थंकर	89
''जीवन क्या जिया'' : समय एवं समाज से संवाद	अनुराधा सिंह	94
नामवर सिंह की डायरी : पन्नों पर कुछ दिन	श्याम सुशील	99
पत्र संसार और तुम्हारा नामवर	अभिलाष कुमार गोंड	104
अगेही भाव की कविताएँ	आशीष त्रिपाठी	109
धरोहर		
राजनीति और हिन्दी भाषा	नामवर सिंह	120
और अंत में		
जीवन और रचना संघर्ष से निर्मित	रवि रंजन कुमार	124

अपनी बात

नामवर सिंह को अंतिम आलोचक कहा गया और उन्हें हिंदी की अंतिम सार्वजनिक उपस्थिति भी कहा गया। यह बातें अतिशयोक्तिपूर्ण हैं किन्तु उनके महत्त्व को बताने वाली हैं। वे हिंदी लेखक और अध्यापक थे जिनकी बुद्धिमता को हिंदी से बाहर तमाम ज्ञानानुशासनों में आदर के साथ स्वीकार किया गया। वे पहले हिंदी लेखक थे जिनके व्याख्यानों को सुनने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। हिंदी अध्यापक की ऐसी विराट सार्वजनिक उपस्थिति पहले कभी नहीं थी।

1926 में बनारस के निकट जीयनपुर गाँव में पैदा हुए नामवर जी ने काशी विश्वविद्यालय से पढ़ाई की और वहीं अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हो गई। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से लोकसभा का चुनाव लड़ने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की नियुक्ति से हटा दिया गया जिसके बाद 1959-60 में वे सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक बने। यहाँ भी उनके विरुद्ध षड्यंत्र हुआ और उन्हें बहुत जल्दी हटा दिया गया। इसके बाद उन्होंने 1960 से 1965 तक बनारस में रहकर स्वतन्त्र लेखन किया। 1965 में 'जनयुग' साप्ताहिक के सम्पादक बनकर दिल्ली आ गये। इस दौरान दो वर्षों तक वह राजकमल प्रकाशन (दिल्ली) के साहित्यिक सलाहकार भी रहे। उन्होंने 1967 से 'आलोचना' त्रैमासिक का सम्पादन प्रारम्भ किया। बाद में वह 1970 में जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष-पद पर प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए। वर्ष 1971 में 'कविता के नए प्रतिमान' पर उन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला। 1974 में थोड़े समय के लिए वह कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक भी रहे। उसी वर्ष जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (दिल्ली) के भारतीय भाषा केन्द्र में हिन्दी के प्रोफेसर के रूप में उन्हें नियुक्ति मिली और 1987 में वहीं से सेवा-मुक्त हुए। अगले पाँच वर्षों के लिए वहीं उनकी पुनर्नियुक्ति हुई। वह 1993 से 1996 तक राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउंडेशन के अध्यक्ष रहे। बाद में वह महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलाधिपति बने। 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' और 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' उनकी शोधपरक रचनाएँ हैं। उन्होंने 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', 'छायावाद', 'इतिहास और आलोचना', 'कहानी : नयी कहानी', 'कविता के नये प्रतिमान', ''दूसरी परम्परा की खोज' और 'वाद विवाद संवाद' शीर्षक से आलोचना पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों के अलावा 2010 से उनके असंकलित लिखी सामग्री और व्याख्यानों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जो लगातार हिंदी समाज में चर्चा का विषय बनी रही हैं। उनके विद्यार्थियों ने उनके क्लासरूम नोट्स को भी पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया है। प्रचुर मात्रा में लेखन और उदात्त सार्वजनिक जीवन में प्रगतिशील विचार की पक्षधरता ने नामवर सिंह को हमारे समय का सबसे बड़ा आलोचक बनाया।

2007-2008 की बात है, तब भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम 1857 की डेढ़ सौ वीं जयन्ती मनाने की धूम देश भर में थी। इतिहास का विषय होने पर भी ऐसे एक आयोजन में केवल नामवर सिंह को बोलने के लिए कोटा में बुलाया गया था। इस क्रांति और इसके प्रभावों के साथ ही नामवरजी ने समकालीन परिदृश्य पर मंडरा रहे खतरों की ओर संकेत किया था। उनका वह व्याख्यान बताता था कि एक आलोचक को इतिहास, राजनीति और समाज का भी कितना गहरा जानकार होना चाहिए। मुझे लगता है कि यही बात नामवरजी को अपने पूर्ववर्तियों और समकालीनों में विशिष्ट बनाने वाली हैं। साहित्य केवल व्याख्या का क्षेत्र नहीं है जहाँ अपनी पसंद-नापसंद से रचनाओं को उत्कृष्ट या रद्दी बता

दिया जाये। असल में यहाँ रचनाओं का सही-सटीक विश्लेषण समय और समाज के व्यापक परिदृश्य में रखकर ही संभव है। वरना क्या कारण है कि जिस छायावाद को तरह तरह की बूझ-अबूझ परिभाषाओं में उलझाया जा रहा था उसे नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में दिखाया कि छायावाद राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। नामवर जी से अपनी पुस्तक या रचना पर विचार जानने की आकांक्षा किसी स्टार आलोचक-लेखक से प्रमाण पत्र पाने की लालसा नहीं थी जो हमारे समय के नए-पुराने रचनाकारों में लगातार रही अपितु यह किसी भी आलोचक की विश्वसनीयता का सबसे बड़ा प्रमाण था। नामवर जी ने देश भर में घूम घूमकर सैंकड़ों व्याख्यान दिए। जिस देश में बड़ी आबादी उन लोगों की हो जिनकी पहुँच पढाई-लिखाई तक मुमकिन नहीं, वहाँ ऐसे व्याख्यान क्या असर कर सकते हैं, यह सहज अनुमान का विषय है। यदि उन्हें समकालीन समाज में जनता का शिक्षक कहा गया तो यह अनुचित नहीं था।

नामवर जी के लेखन को पुस्तकाकार तैयार करने वाले बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य और पुस्तकों के सम्पादक आशीष त्रिपाठी ने उन्हें अप्रतिहत वैचारिक योद्धा कहते हुए लिखा था कि अपने हजारों व्याख्यानों के माध्यम से नामवर सिंह जी नवजागरण की चेतना को आगे बढ़ा रहे हैं। उन्होंने साहित्यिक कृतियों, साहित्यकारों और साहित्यिक प्रवृतियों के विश्लेषण द्वारा जहाँ समाज के अन्धकार के खिलाफ रोशनी के दिए जलाए हैं, वहीं सचेतन विधि से समाज को नई दुनिया में समतावादी सपनों के साथ प्रवेश दिलाने की कोशिश की है। आलोचना और लेखन के साथ नामवर जी के कृतित्व के जिस एक और पक्ष की तरफ ध्यान आवश्यक है वह है हिन्दी अध्यापन में उनका मौलिक अवदान। यदि नामवर जी ने इस क्षेत्र में बड़ी लड़ाइयाँ ना की होती, तो हिन्दी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के अप्रासंगिक होते जाने का अंदेशा था। यह लड़ाई भले उन्होंने जे.एन.यू. से लड़ी हो पर शुरुआत असल में जोधपुर से हो गई थी। अपनी पुस्तक 'जमाने से दो-दो हाथ' में एक जगह उन्होंने लिखा था ''तो क्या, 'धर्मरक्षक' शब्द और 'आनंददाता प्रभो' से ज्ञान माँगने के कारण ऐसी प्रार्थनाएँ पाठ्य पुस्तकों से हटा दी जाएँ? उचित तो यह है कि प्रार्थना भी रहे, धर्म की बात भी रहे। लेकिन बुनियादी वस्तु है कि छात्रों में खुलापन, जिज्ञासा, आलोचना बुद्धि विकसित हो।'' आलोचना बुद्धि के विकास के लिए उन्होंने हिन्दी के जड़-अप्रासंगिक पाठ्यक्रमों को बदल कर उनमे नयी प्राणवायु का संचार किया। वरना अभी भी हिन्दी की दुनिया जाने किन मतों-वादों-रसों में भटक रही होती। यदि आज हिन्दी के बुद्धिजीवी का बौद्धिक संसार में कोई महत्त्व बन पाया है तो इसमें हिन्दी अध्यापन की यह विधि और संस्कार की भूमिका है।

उनके असंकलित लेखन से बनी एक किताब है--'पूर्वरंग' (2018), इसमें नामवर जी का प्रारंभिक आलोचना लेखन है जिसे पढ़ते हुए उनके बुनियादी सरोकारों और रुचियों का पता चलता है। 1959 के एक व्याख्यान में उनकी कही यह बात कितनी प्रासंगिक है, ''आधुनिक साहित्य जितना जटिल नहीं है, उससे कहीं अधिक उसकी जटिलता का प्रचार है। और जिनके ऊपर इस भ्रम को दूर करने की जिम्मेदारी थी, उन्होंने भी इसे बढ़ाने में योग दिया।'' यहाँ वे 'साधारणीकरण' की चर्चा करते हुए कहते हैं, ''नये आचार्यों ने इस शब्द को लेकर जाने कितनी शास्त्रीय बातों की उद्धरणी की। और नतीजा? विद्यार्थियों पर उनके आचार्यत्व की प्रतिष्ठा भले हो गई हो, नई कविता की एक भी जटिलता नहीं सुलझी।'' नामवर जी की मेधा और बौद्धिक क्षमता इन प्रारम्भिक लेखकों में भी दिखाई पड़ती है। नई कविता पर यहाँ चार पाँच आलेख हैं जिनमें उन स्थापनाओं के बीज मिलते हैं जो 'कविता के नये प्रतिमान' में आकार ले रही थीं। पुस्तक के दूसरे खंड में विष्णुचंद्र शर्मा की पत्रिका 'कवि' के लिए छद्मनाम 'कविमित्र' से लिखी अनेक छोटी बड़ी टिप्पणियाँ हैं। 1955 की एक टिप्पणी द्रष्टव्य है, ''मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि चित्र-चयन और चित्र-रचना अर्थात चित्रों द्वारा उपयुक्त रागबोध के पैटर्न का निर्माण की जैसी क्षमता केदारनाथ सिंह में है वैसी आज किसी कवि में नहीं है।''

ऐसी ही एक किताब 'आलोचना और संवाद' में अलग अलग विषयों पर नामवर जी पच्चीस लेख हैं जिनका लेखन काल फैला हुआ है और विषय वैविध्य भी चौंकाने वाला है। पहला आलेख विश्व साहित्य की रूपरेखा पर है तो आगे एक आलेख बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य पर भी है। यह किताब भाषा और साहित्य के अनेक प्रसंगों से जुड़े आलेखों को भी पढ़ने का अवसर देती है तथा संस्कृत और उर्दू से जुड़े भाषा-साहित्य प्रसंगों पर भी विशेष आलेख यहाँ मौजूद हैं। 'शमशेर के साथ आखिरी मुलाकात' शीर्षक आलेख अपनी प्रकृति में संस्मरण के नजदीक हो गया है और नामवर जी अपने प्रिय कवि को सचमुच मन की गहराई से याद करते हैं। मध्यकालीन कवियों की सामाजिक जागरुकता पर भी एक आलेख यहाँ है। खास बात यह है कि इस पुस्तक में एक भी आलेख ऐसा नहीं है जो नामवर सिंह ने लिखित रूप में तैयार न किया हो।

नामवर जी संस्कृति में बहुलतावाद के पक्षधर रहे हैं। उनके लिखे-बोले की बड़ी चिंताओं में सांस्कृतिक बहुलतावाद है। संस्मरणात्मक लेखन की उनकी पुस्तक 'द्वाभा' का पहला आलेख इसी विषय पर है जो 2015 में दिए गए एक व्याख्यान का लिखित रूप है। यहाँ उन्होंने कहा है कि ''सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से हमारे देश की सांस्कृतिक बहुलता को जितना खतरा है, उतना ही, बल्कि उससे ज्यादा खतरा है--उस बहुराष्ट्रीय पूँजीवाद से बननेवाली बाजार की संस्कृति से, जिसे उपभोक्ता संस्कृति भी कहते हैं।. ...खतरा इसलिए ज्यादा है कि ऊपर से विविधता, सतह पर विविधता और मूल तत्त्व उसका एकरूपता का है। माल एक ब्रांड अलग-अलग।'' पहले खंड में हिंदी कहानी के इतिहास से सम्बंधित दो आलेख हैं जो कहानी के सम्बन्ध में नामवर जी की सामान्य अवधारणाओं की भूमिका भी प्रस्तुत करते हैं। प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े तीन आलेख भी यहाँ हैं जो भक्ति आंदोलन के बाद भारत में हुए सबसे बड़े सांस्कृतिक आंदोलन का उज्ज्वल पक्ष दर्शाते हैं। यही नहीं उन्होंने नवगीत जैसी उपेक्षित माने जाने वाली विधा पर भी एक आलेख दिया है। दूसरे खंड में रचनाकारों पर छोटी-छोटी टिप्पणियाँ हैं। ये टिप्पणियाँ जहाँ सम्बंधित के प्रदेय का महत्त्व बताती हैं वहीं अनेक स्थलों पर नामवर जी की संस्मृतियाँ देखते ही बनती हैं।

विख्यात कथाकार स्वयं प्रकाश ने अपनी पुस्तक हमसफरनामा में नामवर जी पर लिखे रेखाचित्र में कहा था, ''मैं सचमुच नहीं सोच पाता कि नामवर जी नहीं होते तो मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय और धूमिल को आज भी इस देश में कितने पाठक नसीब होते....हम सब आज भी नामवर जी का ही मुँह देखते हैं। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यही है कि नामवर जी हिन्दी आलोचना की एक इतनी बड़ी लकीर हैं कि उन्हें छोटा करने के लिए उससे बड़ी किसी लकीर के बगैर काम नहीं चलेगा।'' सचमुच नामवर जी बहुत बड़ी लकीर खेंच गए हैं।

• • •

यह अंक 2014 में नामवर जी के इधर के लेखन पर बनास जन के विशेषांक 'नयी सदी में नामवर' का ही अगला कदम है। इस अंक में नामवर जी की लगभग डेढ़ दर्जन किताबों पर चर्चा की गई है। डॉ. समीक्षा ठाकुर का संस्मरण पाठकों को अच्छा लगेगा और वे पाएँगे कि 'तुम्हारा नानू' में आ गई बातों से अलग कुछ और बातें यहाँ हैं। नामवर जी के सुपुत्र विजय प्रकाश सिंह ने अपने पिता का एक अप्रकाशित दुर्लभ आलेख भी दिया है जो इस अंक की उपलब्धि है। इस सदी का चौथाई समय बीतने को है और नामवर जी की शारीरिक अनुपस्थिति को भी लगभग पाँच साल होने को हैं तब भी उनके बोले-लिखे में पाठकों की रुचि कम नहीं हुई है। कहना न होगा कि विचारहीनता के इस दौर में नामवर जी सरीखे आलोचक-लेखक को फिर पढ़ना विचार की रोशनी से दीप्त होना है।

पल्लव